©2017 IJSRST | Volume 3 | Issue 8 | Print ISSN: 2395-6011 | Online ISSN: 2395-602X
Themed Section: Science and Technology

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में कालिदास की कृतियों में पर्यावरणीय संचेतना

अनुज कुमार निर्मल
शोधच्छात्र
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

पर्यावरण शब्द की व्युत्पत्ति परि एवं आङ् उपसर्गपूर्वक वृ धातु (वरण करने के अर्थ में) में ल्युट् प्रत्यय करने से हुआ है। जिसका आशय है हमारे चारों ओर व्याप्त आवरण अर्थात् मनुष्य के आस–पास पाये जाने वाले वे सभी घटक जो मनुष्य को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते हैं पर्यावरण कहलाता है। भौतिकता के इस अन्धयुग में मनुष्य ही पर्यावरण को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सर्वाधिक नुकसान पहुँचा रहा है। क्योंकि मनुष्य जिस संरक्षण में स्वयं फल–फूल रहा हो, वह खुद ही उसका अपघटक हो तो यह दुर्भाग्य की बात है। पर्यावरण के इस क्षति को मनुष्य किसी भी रूप में पूरा नहीं कर सकता है। जिसके परिणामस्वरूप प्रकृति की विभिन्न आपदायें मनुष्यों पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में दिखलाई पड़ती है। जिसका भयावह रूप, अतिवृष्टि, ओला, सूखा, भूस्खलन, सुनानी आदि के रूप में दिखलाई पड़ता है। पर्यावरण से किसी देश विशेष को नहीं, चिंता अपितु यह ऐसा विषय है जो सम्पूर्ण विश्व को विभिन्न रूपों में प्रभावित करता है। वर्तमान प्रसंग में जलवायु परिवर्तन का होना इसका ज्वलन्त उदाहरण है। पर्यावरण के अन्तर्गत ही मानव जीवन से सम्बन्धित समस्त क्रिया–कलाप एवं सम्पूर्ण जड़ चेतन जगत् समाहित है। जिसकी रक्षा करना प्रत्येक प्राणी का धर्म भी है और कर्त्तव्य भी।

''महाकविकालिदास सरस्वती के अमर पुत्र तथा सुरभारती के सनातन श्रृंगार है। केवल भारतीय साहित्य में ही नहीं, अपितु विश्व–साहित्य में उनका अद्वितीय स्थान है। उनका साहित्य एक ऐसा अनुपम रत्न–राशि है, जिसका अनुकरण कर परवर्ती साहित्यकारों अपने काव्य सम्पदा को समृद्ध बनाया।''[1] महाकवि कालिदास का नाम सुनते ही लोक में श्रृंगार की चर्चा होने लगती है। परन्तु कालिदास को किसी एक ही क्षेत्र विशेष में समेटना अनुचित होगा। महाकवि कालिदास के ग्रन्थों में जितना श्रृंगार की छटा देखने को मिलती है उससे कहीं अधिक पर्यावरणीय तत्त्वों का भी उल्लेख देखने को मिलता है। क्योंकि कालिदास का श्रृंगार प्रेम के उदात्त पराकाष्ठा को परिलक्षित करता है। प्रकृति और मानव के मध्य प्रेम के समन्वय को प्रतिस्थापित करता है। कालिदास की अमरकृति अभिज्ञानशाकुन्तलम् में मंगलाचरण के अन्तर्गत जिस प्रकार से भगवान शिव की स्तुति करते हुए उसमें प्रकृति के सहचर्य को बतलाया है वह वन्दनीय है। कहा गया है कि–

या सृष्टिः स्तुष्टुराद्या, वहति विधिहुतं या हविर्या च होत्री,

ये द्वे कालं विधत्तः श्रुतिविषयगुणा या स्थिता व्याप्य विश्वम्।

या माहुः सर्वबीजप्रकृतिरिति यया प्राणिनः प्राणवन्तः।

प्रत्यक्षाभिः प्रपन्नस्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरीशः।।[2]

अर्थात् महाकविकालिदास ने विधाता की सर्वप्रथम सृष्टि कहकर जल, अग्नि, पृथिवी, वायु आदि से युक्त शंकर को नमस्कार करके लोगों की रक्षा की बात कहते हैं। यहाँ पर कालिदास की दृष्टि बहुत ही सूक्ष्म होकर उन प्रमुख तत्त्वों को व्याख्यायित करने का प्रयास किया जो पर्यावरणीय दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

महाकवि कालिदास अभिज्ञानशाकुन्तलम् के चतुर्थ अंक में मानव और प्रकृति प्रेम को वर्णित करते हुए कहते हैं कि–

पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या

नादत्ते प्रियमण्डनाऽपि भवतां स्नेहेन या पल्लवम्।

आद्ये वः कुसुमप्रसूति समये यस्या भवत्युत्सवः

सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम्।।

अर्थात् पर्यावरण बचाव के लिए वृक्षारोपण आदि करना ही जरूरी नहीं है अपितु इसके साथ–साथ वृक्षों का पालन–पोषण करना भी बतलाया गया है। इस श्लोक में शकुन्तला पतिगृह जाने के लिए वृक्षों, लताओं आदि से अनुमति लेती है। यहाँ प्रकृति का मनुष्य से अन्तरंग सम्बन्ध एवं प्रेम को दिखलाया गया है। शकुन्तला के द्वारा वृक्षों का आलिंगन करना, देखरेख करना ही पर्यावरण के प्रति उनके संवेदनशीलता को प्रदर्शित करता है। शाकुन्तल नाटक के प्रथम अंक में जब राजा आखेट को रथ से निकलता है तो वह देखता है कि–

नीवाराः शुकगर्भकोटरमुखभ्रष्टास्तरूणामधः

प्रस्निग्धाः क्वचिदिङ्गुदीफलभिदः सूच्यन्त एवोपलाः।

विश्वासोपगमादभिन्नगतयः शब्दं सहन्ते मृगा–

स्तोयाधारपथाश्च वल्कलशिखानिष्यन्दरेखाङ्किताः।।[4]

अर्थात् यहाँ प्रस्तुत श्लोक में आश्रम के समीपमृगों का निर्भय रहना, इंगुदि जैसी गुणकारी औषधि, शुक के घोसलों और सरोवरों आदि का वर्णन ही यह दर्शाता है कि कालिदास जैसे मूर्धन्य कोटि के कवियों ने भी पर्यावरण सम्बन्धी विचारों को अपने ग्रन्थों में वर्णित किया जो उन महाकवियों के दूर दृष्टि का परिणाम है। जीव–जन्तुओं के रक्षा सम्बन्धी विचारों को भी विस्तृत वर्णन किया है जैसे कि–

"आश्रममृगोऽयं न हन्तव्यो न हन्तव्यः।।"[5]

अर्थात् यहाँ वन तपस्यिों द्वारा कहा जाता है कि हे राजा यह मृग आश्रम का है इसे न मारिये। कालिदास के इस श्लोक से यह पता चलता है कि तत्कालीन परिवेश में पर्यावरण के प्रति जितना जागरूकता थी, वर्तमान

समय में इसका उदाहरण देखने को नहीं मिलता है। आज विलुप्त प्राय दुर्लभ पशु पक्षियों को भी मनुष्य अपने निजी हितों के लिए मार देता है, जो पर्यावरण को निकट भविष्य में एक घोर संकट खड़ा करता है। इस बात की समीक्षा कालिदास के समाज से तुलना करने पर स्वतः ज्ञात हो जाती है। जो पर्यावरण संकट का बड़ा कारण है।

महाकविकालिदास अपनी कृति मेघदूतम् में अलकापुरी की रमणियों के पुष्पाभूषणों का वर्णन करते हुए कहते हैं कि–

हस्ते लीलाकमलमलके बालकुन्दानुविद्धं

नीता लोध्रप्रसवरजसा पाण्डुतामानने श्रीः।

चूडापाशे नवकुरबकं चारू कर्णे शिरीषं

सीमन्ते च त्वदुपगमजं यत्र नीपं वधूनाम्।।[6]

अर्थात् कालिदास ने वृक्ष के पुष्पों को मानव के अलंकार के रूप में दर्शाया है। जो की उस समय की प्रकृति की महत्त्वा को दिखलाता है। प्रकृति मनुष्य के अटूट प्रेम के अभिव्यक्ति का माध्यम कहा है। दोनों को एक दूसरे का पूरक बतलाया है। यहाँ पर, क्रीड़ाकमल, कुन्दपुष्प, शिरीष के पुष्प और कदम्ब वृक्ष के नामों से यह ज्ञात होता है कि यदि कालिदास को प्रकृतिवेत्ता की जानकारी संज्ञा दी जाय तो वह अतिशयोक्ति नहीं होगी। रघुवंश के नवमसर्ग में महाकवि कालिदास ने ऋतुओं के प्रसंग में बसन्त ऋतु का वर्णन करते हुए कहते है कि–

श्रुतिसुखभ्रमरस्वनगीतयः कुसुमकोमलदन्तरूचो बभुः।

उपवनान्तलताः पवनाहतैः किसलयैः सलयैरिवपाणिभिः।।[7]

अर्थात् वनों के किनारे बढ़ी हुई बतायें इस प्रकार से सजीव दिखती है जैसे कानों को सुख देने वाले भौरों के गुंजार ही उनके गीत हो और कोमल फूल की संज्ञा हसते हुए दाँत हो और हवा द्वारा हिलती हुए वृक्ष की शाखायें मानों हावभाव दिखला रही है। कालिदास की प्रज्ञा इतनी तीक्ष्ण थी कि वह किसी भी वस्तु में यथा निर्जीव में भी सजीवता के प्राण को संचारित कर सकते है। उनका शब्द चातुर्य का कोई जोड़ नहीं था जो कहना चाहते है उसको उसी रूप में कह देते थे।

महाकवि कालिदास कुमार सम्भव में प्रकृति की अनुपम छटा को चित्रित करते हुए कहते हैं कि–

सीकरव्यतिकरं मरीचिभिर्दूरयत्यवनते विवस्वति।

इन्द्र चापपरिवेषशून्यतां निर्झरास्तव पितुर्व्रजन्त्यमी।।[8]

अर्थात् सन्ध्याकाल के वर्णन में उस मनोहर क्षण का चित्रण किया है कि ज्यों–ज्यों दिन ढलता है, त्यों–त्यों सूर्य की किरणें हिमालय के झरनों की फुहारों से हटती जाती है और उनके हटते ही उन फुहारों में बने इन्द्रधनुष भी छिपते जा रहे हैं। इस प्रसङ्ग के वर्णन में कालिदास के वैज्ञानिकता पूर्ण तर्क एवं अनुभव को

बतलाया गया है। क्योंकि जल–कण में जब सूर्य की किरणें पड़ती है तो वहाँ से इन्द्रधनुष की प्रतीत होना यह दिखलाता है कि कालिदास प्रकृति के अत्यन्त गूढ़ तत्त्वों को भलीभाँति जानते हैं। जिसके परिणाम स्वरूप वह उसकी विवेचना करते है।

महाकवि कालिदास ने रघुवंश में गंगा और यमुना के जल को अत्यन्त निर्मल बतलाया है और कहा है कि इसमें स्नान करने मात्र से प्राणी मोक्ष को प्राप्त कर लेता है–

समुद्रपत्न्योर्जलसन्निपाते पूतात्मनामत्र किलाभिषेकात्।
तत्त्वावबोधने विनापि भूयस्तनुत्यजां नास्ति शरीरबन्धः।।[9]

अर्थात् इतने पवित्र जल से मनुष्य जन्म मृत्यु के चक्र से मुक्ति प्राप्त कर लेगा। किन्तु वर्तमान समय में सबसे ज्यादा प्रदूषण गंगा नदी में ही देखने को मिलता है। भारत सरकार की तरफ से अनेक योजनाओं का क्रियान्वयन किया जा रहा है। किन्तु इतना होने के बावजूद आज इन पवित्र नदियों की स्थिति उसी तरह बनी हुई हैं इस बात का पता लगाया जा सकता है कि इतने प्राचीन युग में भी इन नदियों का महत्त्व रहा है।

महाकवि कालिदास ने ऋतुसंहार में ऋतुवर्णन और पर्यावरण के तादात्म्य को सम्यक् रूप से प्रतिस्थापित किया है। ऋतुसंहार में ग्रीष्मऋतु के प्रभाव को बतलाते हुए कहते हैं कि जब ग्रीष्म ऋतु में सूर्य की प्रचण्ड किरणें संतप्त करने लगती है तब वनों में जल का मिलना दुर्लभ हो जाता है, पशु–पक्षियाँ प्यास से व्याकुल होते हैं और मृगमरीचिका में जल को खोजते हुए इधर–उधर भटकते रहते हैं। यहाँ पर महाकवि ने जलसंचय की बात की है और उसके माध्यम से लोगों को जागरूक करने की बात भी की है। ऋतुसंहार में वर्णन करते हुए कहते है कि–

मृगाः प्रचण्डातपतापिता भृशंतृषा महत्या परिशुष्कतालवः।
वनान्तरे तोयमिति प्रधाविता निरीक्ष्य भिन्नांजन सन्निथं नभः।।

इस प्रकार इन सभी वक्तव्यों को विचार करने से यह ज्ञात होता है कि ग्रीष्म ऋतु के इस व्यापक प्रभाव के बढ़ने से वनप्रान्तों में स्वभाविक रूप से आपस में बैर रखने वाले जीव–जन्तु भी आपसी कटुता को त्यागकर परस्पर मैत्रीभाव का उपदेश देते हों। क्योंकि यहाँ पर महाकवि ने जल के अभाव से सब को एक सूत्र में बाँधने के कार्य को किया है और जल के महत्त्व को बतलाया है।

इस प्रकार पर्यावरण एक ऐसा प्रासंगिक विषय है जिस पर जितना भी विचार किया जाय कम ही है। क्योंकि पर्यावरण पर ही मनुष्य जीव, जन्तु, सभी का भविष्य निर्भर है। भारतीय संस्कृति में प्राचीन से लेकर अर्वाचीन तक जो भी साहित्य उपलब्ध होते हैं सब में पर्यावरण को लेकर विशेष अध्ययन सामग्री देखने को मिलती है। मानव प्राणी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रकृति प्रदत्त स्त्रोतों पर ही निर्भर है उसी के सहचर्य से जीवन सम्भव है। महाकवि कालिदास पर्यावरण के सभी घटकों का अपने काव्यग्रन्थों में विवेचन किया है जैसे–नदियाँ, पुष्पों, झरने, स्थलों, जीव, जन्तुओं आदि जो पर्यावरणीय दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। कालिदास ने अपने

काव्यों में मानव का पर्यावरण के मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध को बखूबी दिखलाया है। भारतीय शास्त्रों में पर्यावरण को लेकर बहुत ही जागरूक किया गया है। इस प्रकार पर्यावरण संरक्षण की संकल्पना उतनी ही प्राचीन है जितना कि मानव प्राणी का इतिहास है।

सन्दर्भ–सूची

1. मेघदूत (पूर्वमेघ)–डा0 तारिणीझा, पृष्ठ 1
2. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, 1/1
3. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, 4/3
4. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, 1/14
5. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, प्रथम अंक
6. मेघदूत/उत्तरमेघ, श्लोक 2
7. रघुवंशम्, 9/35
8. कुमारसम्भवम्, 8/31
9. रघुवंशम्, 13/58
10. ऋतुसंहार